कर्णाभरण ।

अर्थात्

केवल दोहा छन्दो बद्ध लक्ष्य लक्षण सहित
अलंकार वर्णन ।

गोविन्दकविकृत

जिसको डुमराँव निवासी नकछेदी तिवारी ने सत
कविजनों के चित्तविनोदार्थ प्रकाशित किया ।

काशी ।

भारतजीवन प्रेस में मुद्रित हुआ ।

सन् १८९४ ई० ।

प्रथम बार १०००] [मूल्य ।/

श्रीगणेशाय नमः ।

कर्णाभरण ।

दोहा ।

लहतमोदमकरन्दजहँमुनिमनमिलितमिलिन्द ।
वाही मूरति मञ्जु के बन्दौं पद-अरबिन्द ॥ १ ॥
कीन्हो सुकवि गुविन्द जू कर्नाभरन विचारि ।
साँचो कर्नाभरन कवि करहिं क्रिया उर धारि ॥
अलङ्कार यामै कहत लच्छन लच्छि समेत ।
निज मति के अनुसार तें समुझहिं बुद्धिनिकेत ॥
जाकी समता दीजिये सो उपमेय बखान ।
जाको समता कीजिये सो उपमान सुजान ॥४॥
उपमान रु उपमेय को धरम दुहूँ को होइ ।
सो साधारन धर्म है बरनत हैं सब कोइ ॥५॥
सो सी सी सीं तूल लौं सम समान उर आनि ।
ज्यों जैसे इमि औरऊ उपमावाचक जानि ॥६॥

ये चारौं जहँ बरनिये पूरन उपमा सोइ ।
इक है चय के लोप तें लुपुता आठौं होइ ॥७॥

अथ पूर्णोपमा ।

सो उपमा जहँ दुहुन की समता परै लखाइ ।
बन्दौं कोमल कमल से जगजननी के पाइ ॥८॥

अथ वाचक लुप्ता ।

उपमावाचक लोप तें वाचकलुप्ता जानि ।
जलद स्याम जदुपति तड़ित पीतबसन फहरानि॥

अथ धर्म्मवाचक लुप्ता ।

बिना धरमबाचक धरमबाचक लुप्ता होइ ।
मोहन मनतें ससिमुखी छिन भरि छुटति नसोइ॥

अथ उपमेयवाचक लुप्ता ।

इन्ह दुहु बिन उपमेयवाचक लुप्ता पहिचानि ।
चढ़ी अटा मै चन्द्रिका सुखद लखो किन आनि॥

अथ उपमानलुप्ता ।

सो लुप्ता उपमान है जहँ उपमान परै न ।
डरे हरिन के से चपल कहा करे अलि नैन ॥

अथ वाचकोपमान लुप्ता ।

सो वाचकोपमान लुप्ता दोऊ जहँ नाहिं ।
कैसे ये चञ्चल नयन देखत चित चुभिजांहि ॥१२॥

अथ धर्मोपमान लुप्ता ।

बिना धरम उपमान धरमोपमान लुप्तासु ।
हिमकर कैसो देखिये तेरो सुजस प्रकासु ॥१४॥

अथोपमानवाचकधर्म लुप्ता ।

सोपमान वाचक धरम लुप्ता इनको लोप ।
मृदुबैनी ब्रजराज पर ऐसे कीजतु कोप ॥१५॥

अथानन्वय ।

एकहि को उपमान उपमेय अनन्वय होइ ।
दया दान रन मै तुही तोसो तूही जोइ ॥१६॥

अथोपमेयोपमा ।

जहँ उपमेयोपमा दोउ पारा पारी होइ ।
सो उपमेयोपमा करि बरनत हैं कवि लोइ ॥१७॥
फैले सिगरे जगत मै सिगरे जग को जित्ति ।
जाकी कित्ति प्रताप सी जा प्रताप सो कित्ति ॥

अथ पञ्चविधप्रतीप ।

करियत है उपमान को सम उपमेय बखान ।
तासों प्रथम प्रतीप करि भाखैं सुकवि सुजान ॥
नैनन की सम नलिन करि बिधुतुव बदन समान।
घुन कैसो आखर बहुरि बन्यौ न बिधि सौं आन॥

नहिं आदर उपमेय को होय लखें उपमान ।
याही विधि पुनि दूसरो सो प्रतीप कहि आन॥
एरे मुख निज रूप को तू मति करहिं गुमानु।
तो सो आयो सरद को अब तो कलानिधानु ॥
बर्ननीय उपमेय करि अनादरित उपमान ।
ताहू सों सब तीसरो कहत प्रतीप सुजान ॥२३॥
करत गरब तू कल्पतरु बड़ी सु तेरी भूल ।
या प्रभु की नीकी नजरि तकि तेरिही तूल ॥
उपमा प्रथम प्रतीप मैं जो आये निरधारि ।
ता अन हूबे की उकुति चौथो ताहि बिचार ॥
नैनन की सम नलिन सौं कहत जू हैं मतिमंद।
तुव मुंह के सम ह्वै सकत कहाँ बिचारो चन्द॥
भार धरे उपमान को उपमेयहि को जानि ।
ब्रथा कह्यो उपमान पञ्चम प्रतीप बखानि॥२७॥
जो वाके लोचन लखे जिन अधीन ब्रजराज ।
अबकहिखञ्जनसोकहाकहाकंजसोंकाज ॥ २८ ॥

अथ षड्विधरूपक ।

एक बर्न्य तें भिन्न नहिं इकता सदृस सुरूप ।
कहत सुकविजन ग्रन्थ में यों रूपक बिय रूप ॥

तीनि तीनि परकार सौं छतरह मिलि कै होइ ।
कहूँ बर्न्य सम कहुं अधिक कहूं ऊनहूं होइ ॥२९॥

अथ सम अभेद ।

दुज-मन-सम्पूरन-करन कूरन कों विकरार ।
बहुरो दसरथ लाड़िले लियो आनि अवतार ॥

अथाधिका भेद ।

का सिर नाइ रही सफल कीजै नयनसरोज ।
करजोरे आगें खरो मूरतिवन्त मनोज ॥ ३१ ॥

अथ न्यूनभेद ।

कलिजुगसतजुगसोकियोखलदलसकलसँघारि ।
भुवनभरन पोखनकरन द्वै भुजधरि दनुजारि ॥

अथ समतद्रूप ।

रच्यो विधाता दुहुंनि लै सगरी शोभा साजु ।
तू सुन्दरि रति दूसरी यह दूजो रतिराज ॥३३॥

अथ न्यूनतद्रूप ।

भिरतफिरतजहँतहँकह्योसमझतुनहिंबदफैल ।
यह अजान है दूसरो बिन बिषान को बैल ३४

अथ परिणाम ।

करतु जहां उपमान उपमेय रूप ह्वै काम ।
अलंकारकरता सकल ताहि कहत परिनाम ॥

सोनजुही कहुं कहुं जुही कहूं जाति की जाल ।
हरे हरे करकमल सों फूलन बीनति बाल ॥३६॥

अथ द्विविधोल्लेख ।

लखहिं अनेक जू एक को जवहीं बिबिध प्रकार ।
ताहि कहत उल्लेख हैं सब कविकुलसर्दार ॥
गन्यौं तोहि प्रथु कै प्रजनि अरिजन जानत ओज।
नारिनलख्योमनोजकरि लख्योभिखारिनभोज ॥
एकै एकहि वस्तु को जहँा विषय के भेद ।
बहु बिधि बरनत बरन ये सो उलेख तजि खेद॥
रन में पत्थसमत्थ * तूं रुचिराई रतिराज ।
तपन तेज में चखनिसुख दीवै मैं द्विजराज ॥

अथ भ्रमसुमिरनसन्देह ।

भ्रम सुमिरन सन्देह सो अलङ्कार ये तीनि ।
भ्रांति मान स्मृति मान संदेह बखाने बीनि ॥

भ्रांति ।

चहुँ घा तेरे सुजस की रूरी रासि निहारि ।
फिरिफिरिटोवतजटनिहरगिरिगंगाअवधारि ॥

* पार्थ = अर्जुन ।

सुमिरन ।

गुरु जगत को तू जलद करत बड़ोई काम ।
जोहत जाहि न कौन के मन आवै घनस्याम ॥

सन्देह ।

जुरी बीजुरी कै किधौं रही तिया ये छाजि ।
आई हिमकर की कला किधौं राहुभय भाजि ॥

अथ शुद्धापन्हुति ।

करियत प्रकृतनिषेध जहँ और प्रकृत को ठान ।
शुद्धापन्हुति कहत हैं तासौं सुकवि सुजान ॥४५॥
यह चपला चमकति नहीं डारि धनुष अरु बान ।
बिरहिन पर अतिकोप करि काढ़ी काम कृपान ॥

अथ हेत्वपन्हुति ।

जहां निषेध्यो जुगुति सों फिर बरन्यो करि आन ।
हेतु अपन्हुति कहत हैं तासों सुकवि सुजान ॥
ये नहिं किंसुकसुमन कहि कहँ सुमनन मे भार ।
प्रान बटोहिन के बिरह जरि बरि भये अँगार ॥

अथ पर्य्यस्तापन्हुति ।

जहँ निषेध निजधर्म को कहै प्रकृत में सोइ ।
पर्य्यस्तापन्हुति कहत ताही सों सब कोइ ॥४६॥

यह शशधर नहि है कहा शशधर बदन रसाल।
यह न चांदनी चांदनी मृदुबिहँसनि नँदलाल॥

अथ भ्रान्तापन्हुति।

सुनत बात संदेह जो सुननहार के होइ।
ताके भ्रमहि निवारिये भ्रांतापन्हुति सोइ॥५१॥
काँपी पसीजी पेखतहिं ह्वै गो औरे हाल।
नजरि पर्‌यो कालौ कहा नहिं आलो नँदलाल॥

अथ छेकापन्हुति।

सुनि रहस्य की बात कहि मङ्क जु पूछै कोइ।
तासो सांच छिपाइबो छेकापन्हुति सोइ॥५३॥
भयो निपट मोमनमगन सखो लखत घन स्याम।
लख्यो कहा श्रीपति नहीं जलधर दीपतिधाम॥

अथ कैतवापन्हुति।

छल मिसि आदिक पदन सीं जहां छपैबो होइ।
सिगरे कोविद कैतवापह्नुति बरनत सोइ॥५५॥
कहतो हो नहि मानिहौं कैतो कहो सुजान।
अब चख मगह्वै कढ़िचल्यो आँसुन के मिस मान॥

अथोत्प्रेक्षा षट्धा ।

ठहरावै जहँ तरक सों और वस्तु को और ।
हेतु अहेतुहि फल अफल उत्प्रेक्षा तिहुं ठौर॥५७॥
तीनिहु को द्वै द्वै तरह कृतरह करत प्रकास ।
कविन सिद्धविषया कही अरु असिद्धविषयास ॥

सिद्धविषया वस्तूत्प्रेक्षा ।

परगट पेखि मयङ्क मै सखि कलङ्क दिखरात ।
तेरे मुख सों हारि कै मनहु हलाहल खात॥५८॥

असिद्धविषयावस्तूत्प्रेक्षा ।

उगिलत सो पय पूर को निगलत सो तमतोम।
चख-चकोर-चिन्ता-रतन उयो सुहावन सोम ॥

सिद्धविसयाहेतूत्प्रेक्षा ।

एकहि संग निवास तें उपजे एकहि संग ।
कालकूट की कालिमा लगी मनौ बिधु-अंग ॥

असिद्धविषयाहेतूत्प्रेक्षा ।

तुवचखनिरखिलजाइमनु किय बनवास मृगीन
कुवलय रहत मलीन दिन रहै पैठि जल मीनं॥

सिद्ध विषयाफलोत्प्रेक्षा ।

मधुप निकारन के लिये मानहु रुकी निहारि ।
दिनकर निजकर देत है सतदल दलनि उघारि ॥

असिद्ध विषयाफलोत्प्रेक्षा ।

सुरसरि-तट लोचनदहन निकट संभु सिरमांह ।
तुव मुखहू बेकामनहु तप ठान्यौ निसिनाह ॥

अथ रूपकातिसयोक्ति ।

विषई निगल्यो विषय तेहि रूप विषय को ज्ञान ।
बरनत तासों रूपकासयोकती मतिमान ॥६५॥
बिलसतिबंधुरविधुलिये बिबि बारिज बिधु अंग।
चली जाति चम्पकलता तकि तमाल के संग ॥
मिली दुहुनि की दुहुनि मे देखी दूनी काँति ।
लखि २ सखि तमतोम संग चली जुन्हैयाजाति॥

अथ सापन्हवातिसयोक्ति ।

अतिसयोक्ति के भीतरहि जहाँ अपन्हुति होइ ।
तहां कहत सापन्हवतिसयोकती सब कोइ॥६८॥
तेरी सुनजरि मे सुधा भूलि कहत बिधु माहि।
कालकूट कुनजरि वृथा जहँ तहँ बरनत ताहि॥

अथ भेदकातिसयोक्ति ।

वरनत हैं जिहि ठौर मै बर्ननीय करि और ।
भाषत हैं कवि भेदकातिसयोकति तिहि ठौर॥
कोकिल ऐसी सुरन मै सुरनहु मै ऐसी न ।
या अबला औरै भई धारति कला नवीन॥७१॥

अथ सम्बन्धातिसयोक्ति द्विधा ।

सम्बन्धातिसयोक्ति है जहँ अजोग मै जोग ।
तुव प्रताप सों तपत है लंकाज को लोग ॥७२॥
जहँ अजोग है जोग मै तहां वहै पहिचान ।
तेरो दान लखि गयो चिन्तामनि को मान॥७३॥

अथाक्रमातिसयोक्ति ।

प्रगट एकही संग मै हेतु काज जहँ होइ ।
तासों बरनत अक्रमातिसयोकति सब कोइ ॥
बानासन ते राउरे बान विषम रघुनाथ ।
दस-सिर सिर धर तें छुटे दोऊ एकहि साथ ॥

अथ चपलातिसयोक्ति ।

प्रगट हेतु के होतही जहां काज ह्वै जाइ ।
तहँ चपलातिसयोति बुध बरनत सकल बनाइ॥

तिय सी पीय बिदेस कों मांगत बिदा मनाइ ।
कङ्कनकर तें गिरि पर्‍यो गिरी आप मुरझाइ ॥

अथ अत्यन्तातिसयोति ।

आगै प्रगटै काज जहँ पीछै कारन होइ ।
अत्यन्तातिसयोति तहँ बरनत हैं सब कोइ ॥
आगेही गोपाल को लूटि लियो मन मैन ।
पीछै चितई तू सखी किये निचौहें नैन ॥

अथ तुल्ययोगिताविधा ।

एकै धरम अवर्न्य को औरु वर्न्य को होइ ।
सिगरे कवि कोविद कहत तुल्ययोगिता सोइ ॥

अवर्न्य यथा ।

जिहि कीन्हे लोचन सकल तेरे लोचन चाहि ।
नीकि लागत मीन मृग खञ्जन कञ्जन ताहि ॥

वर्न्य यथा ।

तोहि जीति हर को हरा अरि को सुरपुर बास ।
सुरबनितन को पति मिलै तेरे कोप प्रकास ॥

अथ दूजी ।

कीजै जहां समान करि हित अहितहु मै काम ।
ताहु कहत अतुल्य मति तुल्य योगिता नाम ॥

कीन्हो जापर नेह तुम जापर कियो सनेह ।
दियो दुहूं कों करि अचल अति आराम सुगेह॥

तीजी तुल्य ।

होइ जु गुन गरुवे न सो सम कीबे को बैन ।
तुल्ययोगिता तीसरी तासों कहत सचैन ॥८८॥
कामधेनु अरु कामतरु चिन्तामनि मन मानि।
चौथो तेरो सुजस अरु ये मनसा के दानि ॥

अथ दीपक ।

वर्न्य अवर्न्यन को जहां एकै धरम लखाइ ।
दीपक तासों कहत हैं सिगरे कवि समुदाइ ॥
जलधर-छाया छनप्रभा छवि सपने को ज्ञान ।
प्रीति एकही ओर को नहि ठहराति निदान ॥

अथ दीपिकावृत्ति विधा ।

शब्द फिरैं अरथ जु फिरैं फिरैं शबद अरथोउ ।
आवृति भांति त्रै दीपक भाषत हैं सब कोउ ॥

शब्द एक अर्थ भिन्न ।

बहैं रुधिर सरिता बहैं किरवाने कढ़ि कोस ।
बीर न बरहि बरांगना बरहिँ सुभट रनरोस ॥

शब्द भिन्न अर्थैक्य ।

दिसि २ बिकसि कुटजबन फूले रुचिर रसाल ।
सखि कैसे ऐसो समौ बीतै बिन नँदलाल ॥९४॥

शब्दार्थ ऐक्य ।

बोलत चातक चाइ सों बोलत मत्त मयूर ।
बरषत जलद-वियोग-तिय दृग बरषत पयपूर ॥

अथ प्रतिवस्तूपमा ।

दुहूं वाक्य पद भेद सों होइ जो धरम समान ।
तासों प्रतिवस्तूपमा बरनत सकल सुजान ॥९६॥
दाता दीरघ मौज को राजत भुव-भरतार ।
बारि बिपुल को बारिधर बिलसत बरषनहार ॥

अथ दृष्टान्त ।

जहां बिम्ब प्रतिबिम्ब है बरन्यो तहँ दृष्टान्त ।
तुही प्रतापी आतपी तपनै अवनीकान्त ॥ ९८ ॥

अथ त्रिविध निदर्सना ।

सम दोऊ वाक्यार्थ जहँ बांधे हैं करि एक ।
तासों कहत निदर्शना सिगरे कवि सविवेक ॥
जंग-जीति जे चहत हैं तोसों बैर बढ़ाइ ।
जीबे की इच्छा करत कालकूट ते खाइ॥१००॥

जुपदारथ उपमान को सो ल्यावै उपमेय ।
याहू तरह निदर्सना सुनत मानि मन लेय ॥
लीन्हे तेरे करन नृप-करन करन की रीति ।
पांयनि अंगद की वहै लई रीति करि प्रीति ॥

तत्रैव एकस्यां भेदद्वयं ।

निजकिरिया सत सैं जु सत अरथ जनैबो होइ ।
ताहि सदर्थ निदर्सना बरनत हैं सब कोइ ॥
उदै होतहीं जगत को हरत तपनि दुखदन्द ।
सबही कों सुख दीजिये बढ़े बतावत चन्द ॥
असत क्रिया निज सों असत अरथ जनावै कोइ।
सो असदर्थ निदर्सना पढ़त प्रवीने लोइ॥१०५॥
खोवत प्रान अजान जे करत कूर को संग ।
यहै सिखावत छोड़ि तन दीपकसिखा पतंग ॥

अथ व्यतिरेक ।

उपमेयहि उपमान ते जहँ बिसेस कछु होइ ।
बरनत हैं व्यतिरेक तहँ अलङ्कार सब कोइ ॥
तेरो मुख अरु बिधु धरे दोऊ जगमग जोति ।
पै यामे मित्रहि लखि चटक चौगुनी होति ॥

अथ सहोक्ति।

साथै बरनन कीजिये सुनत लगै जो चारु।
तासों कहत सहोक्ति हैं सिगरे कवि करि प्यारु॥
सम्पति सुमति सचैन ते राखे सुबस बसाइ ।
विपति अरिन के संगही दीन्ही दूरि भगाइ ॥

अथ विनोक्ति द्विधा।

प्रकृत वस्तु काहू विना होय हीन कै चारु ।
सो विनोक्ति द्वै भांतिको बरनत कविकरिप्यारु॥
वेई अँग भूषन बसन वेई पहिरे बाल।
पै तुम बिन वाकी चटक रही न वह नँदलाल॥
देहु दिखाई मति लला सुनिये दुरै दुरै न।
कैसे नीके लगत ये बिन सकोच के बैन॥

अथ समासोक्ति।

अप्रस्तुत वृत्तान्त जहँ झलकत प्रस्तुत माहि।
समासोक्ति तहँ बरनिये ग्रन्थनि को मत चाहि।
मनरंजन गुनमय विमल पानिप पूरन पाइ ।
राख्यो हारहि प्यार सो छतियां तिया बसाइ ॥

अथ परिकर।

देखि विशेषन पै परै अभिप्राय जिहि ठौर ।
अलंकार परिकर कहत ताहि सुकवि सिरमौर॥
रत्नाकरवासीर मा प्राननि को आधार ।
हरि कुबेरपति राउरो हरैं रोग बिकरार ॥

अथ परिकरांकुर।

साभिप्राय विशेष्य परिकरांकुरै बरनोसु ।
सखी प्रान कैसे बचै पञ्चबान किय रोसु॥ १८॥

अथ श्लेष त्रिविध।

प्रकृत २ मै अप्रकृत प्रकृत अरथ बहु जोय ।
अप्रकृत प्रकृतहूं लखे श्लेष तीन बिधि होय ॥

प्रकृतप्रकृत।

गिरिवर मानद भुजगधर गोपति बर की दानि।
नर तन शील सुकरहि तो रच्छा सद्गुनखानि॥

प्रकृत्याप्रकृत।

दीनो जिन घनसमय मै मदन अगिन को जारि।
नीलकंठ आली बहै धरै भुजंग निहार॥ १२१ ॥

अप्रकृतअप्रकृत।

सुमनमई देखत बँधे जामै मुकुत अनेग ।
ता तिय बेनी तूल है जस-जुत तेरी तेग॥ १२२॥

अथाऽप्रस्तुतप्रसंसा ।

अप्रस्तुत बर्नन जहां प्रस्तुत लीन्हे होइ ।
अप्रस्तुत परसंस कवि सिगरे बरनत सोइ ॥
भयो सलिलपति सरितपति अरु रतननकोखानि
कहा बड़ाइ समुद्र की जु पै न पीजत पानि ॥

अथ प्रस्तुतांकुर ।

प्रस्तुत के बरनन जहां प्रस्तुत कढ़त बखान ।
बरन्यो सिगरे कोबिदन प्रस्तुतांकुरै जान ॥
सीत बात आतप सही राखि तेरियै आस ।
तऊ पपीहा को जलद तैं न बुझाई प्यास ॥

अथ पर्य्यायोक्तिर्द्विधा ।

ताको कहिये फेर सों जो कहिबे कों होइ ।
मिसु करि इच्छित साधिये पर्यायोकति दोइ ॥
कत भटकत गावत न क्यों वाही के गुनगाथ ।
जाके लोचनहीं किये बिन बलयनि रतिहाथ ॥
पथिक सघन वा कुंज मै दिन मे राति लखाइ।
सुख पैहो घर ते अधिक घाम घरीकु बिताइ ॥

अथ व्याजस्तुतिर्द्विधा ।

देखत तो निन्दा करै समुझै ते स्तुति होइ ।
परनुति ते परनुति कढ़ै व्याजस्तुति बिधि दोइ॥
कहा कहौं कहत न बनै सुरसरि तेरी रीति ।
ताकै तू मूड़हि चढ़ै जो आवै करि प्रीति ॥
सुकृतिनकोसाहिबजलद जानि पस्यो तू मोहि।
वा कामिनि की छविधरे दामिनि लपटी तोहि॥

अथ व्याजनिंदा द्विधा।

दुबिध व्याज निन्दा किये स्तुति निन्दा ह्वै जाइ।
आनहि निन्दत आनकौ निन्दा कढ़ै जु आइ॥
अधर जमुन सरसुति चखनि स्वेद सुरसरितगात
मनभावन पावन भले दीन्हो दरसन प्रात ॥
लखे बिलोचन बावरे वाही के ब्रजनाथ ।
जोहतही जिन करि दियो हियो राउरे हाथ ॥

आक्षेपस्त्रिधा ।

आपुकह्योफिरिताहिको कियो निषेध बिचारि।
ताहि कहत आक्षेप कवि सिगरे उर अवधारि॥
सखि तोसों कहिबे कछू नातरू कहै बलाइ ।
वह मुख देखि आपुही जैहै मान हेराइ ॥ ३७॥

लागै सुनत निषेध सो होइ निषेधाभास।
सो दूजो आक्षेप है बरनत कवि सविलास ॥
मै न मान मेट्यौ चहति कहति यहै उर आनि।
मुखन नाइ मानत सखी मैही सुखमा-खानि ॥
कीबे कों अज्ञा प्रगट कथ्यो निषेध जु होइ।
सो तीजो आक्षेप को भेद कहत सब कोइ ॥
जैयै जू जो पै तुम्हे जैबोही जदुराइ।
जाति-सुमिर ह्वैहों जु तौ पहुँचि रहौंगो आइ ॥

अथ विरोधाभास।

होइ बिरोध न, देखियै जहँ बिरोधअभास।
सिगरे कवि कोबिद कहत ताहि बिरोधाभास॥
कहत कृपामय सब सदा लीन्हे रहत कृपान।
तू असील साहब तऊ सोहत सीलनिधान ॥

अपरंच।

बेगारी कै ल्यावतै गारो देत जरूर।
तबै अभागे फिरत ये भागे भागे कूर ॥ १४४ ॥

बिभावना षट्धा।

विद्यमान कारन नहीं तऊ काज जहँ होइ।
तासों प्रथम बिभावना बरनत हैं सब कोइ ॥

अवलोकि बिनहूं अनी तुव अवनी के इन्द ।
थिर न रहत कबहूं कहूं थरर काँपत अरिन्द ॥
हेतु न जहँ सिगरो तऊ होइ काज की सिद्धि ।
दूजो जानि बिभावना बरनत जिहि बुधिरिद्धि॥
आपु अंग-बिन कुसुमधनु सरसावन्त बसन्त ।
तऊ सदा जग सकल कों जीतत रति को कन्त॥
प्रतिबन्धक परगट तऊ होइ काज जिहि ठौर ।
तीजी ताहि बिभावना बरनत कवि सिरमौर॥
का सिखवत सखि देत नहि मानन सीख मनोज
ब्रजचन्दहि सों सुख लहैं याके नैनसरोज ॥
है अहेतु ते काज की पैदाइस जिहि ठौर ।
चौथी चतुर बिभावना बरनत बुधि के जोर ॥
यह अचरज जासों कहैं ल्यावै मनहि कहासु ।
वा चंपक की बेलि तें काढ़ति कमल की बासु॥
जो बिरुद्ध जा काज को तातें काज जु होइ ।
तहँ बिभावना पांचई बरनत हैं सब कोइ ॥
कहा कहूं जदुपति बिना भयो जगत बिपरीत।
हिमकरहू की जारती ये किरनै अविनीत ॥

परै काज तें हेतु की पैदाइस जहँ देखि ।
छठई ताहि बिभावना बरनत सुकवि बिशेषि ॥
तो पेखनि पीयूष को कहा कहैं गुनगाथ ।
जिन कीन्हो नँदनन्द उर नेहनदी को नाथ ॥

अथ विशेषोक्ति ।

विद्यमान कारन बन्यो तऊ न जहँ फल होइ ।
ताहि कहत सुविशेष मति विशेषोक्ति सब कोइ॥
तुव कृपानि पानिपमई जदपि नरेस दिखाति ।
तऊ प्यास परप्रान की याकी नहीं बुझाति ॥

अथ संभावना ।

जहँ काहू फलसिद्धि को कह्यौ असम्भव होइ ।
कहत असंभव नाम तहँ अलंकार सब कोइ ॥
को जानत हो बिपुल गिरि गरुयो कमठ कठोर ।
धनुष उठैहै तोरिहै रघुकुलकमलकिसोर॥१६०॥

असंगति त्रिधा ।

हेतु काज के थान को भेद जु होइ विरुद्ध ।
कहत असंगति ताहि सब सतसंगति मतिसुद्ध॥
यह अचरज की बात बलि कहा कहौं जदुबीर ।
गैठी वह उर रावरे बाढ़ी मो उर पीर ॥१६२॥

कीबे को जो और मै कह्यो और मै सोइ ।
ताहि असंगति दूसरी बरनत हैं सब कोइ ॥
गह्रै बाँह कहि का भयो तेरो बड़ो सुहाग ।
उर करिबे को सो करति तू सखि अँखियन राग
उद्यत औरै करन को किय तासों जु विरुद्ध ।
ताहि असंगति तीसरी बरनत जे मतिसुद्ध ॥
लागे देवन को करन सगरो निर्भय काम ।
देखहु काम जराइ यो गौरीपति गुनधाम ॥

विषमालंकार त्रिधा ।

अनमिलिअनमिलि वस्तु को बर्नन है जिहिठौर ।
ताहि बखानत विषम हैं सकलसुकवि सिरमौर ॥
मैं कै बा बिनती करी मानठानि दुखदैन ।
कहां ससी सो मुख कहां कठिन काठ से बैन ॥
कारन औरै रूप को काज औरही रूप ।
विषम बखानत दूसरो जे मति धरे अनूप ॥
लसति लये हीरा कुमुद कुन्द कुसुम की बानि ।
रँग्यो हियो हरि को सखी वादिन की मुसुकानि ॥

हित को करै उपाउ जहँ लाभ अहित को होइ।
विषम बखानत तीसरो ताहू सों सब कोइ ॥
आई आनँदमगनमन रामहि बरन सकाम ।
कै कुरूप सूरपनखा गई बहुरि निज धाम ॥

अथ सम लिखा ।

जहँ दोउ अनुरूप को बरनन करिबो होइ ।
अलङ्कार सम ताहि को कहत सयाने लोइ ॥
जैसो कछु विधिनै कियो पारावार अपार ।
तैसोई मुनि मिलि गयो ताको पीवनहार ॥
कारन के गुन काज मे देखि परै जिहि ठौर ।
ताहू को सम दूसरो बरनत कवि सिरमौर ॥
लखो काल्हि कछु औरही आजु औरहो कांति।
काढ़ी किर्त्ति तुव तेग ते धरे बाढ़ि इहि भांति॥
आरंभ्यो जो कारन को बिन अनिष्ट सो होइ ।
ताहू सों सम तीसरो बरनत हैं सब कोइ ॥
रामहि मे मन देन कों तुम कीन्हो चितचाह ।
भली भई आपै रह्यो लगि मन रामहि माहि ॥

अथ विचित्र ।

उलटै फल की चाह सों जतन करै जिहि ठौर ।
ताहिबिचित्रबिचित्रमति कहतसुकविसिरमौर ॥
क्यौंनसुरसरितकोसुमिरिद्दरसिपरसिसुखलेत ।
जाकै तट मैं मरत नर अमर होन के हेत॥१८०॥

अथ अधिक द्विधा ।

जहां बड़े आधार तें अधिक होइ आधेय ।
अलङ्कार जानहु तहां अधिक अधिकमति ज्ञेय ॥
जामैं भारी भुवन सब गँवई से दिखरात ।
तेहि अखण्ड ब्रह्मण्ड मैं तेरो जस न समात ॥
जहां बड़े आधेय तें अधिक होइ आधार ।
ताहि अधिक दूजो कहत सकल सुकवि सरदार ॥
जा जदुपति के उदर मैं सिगरो बसतु जहान ।
सुख सों राखति ताहि तू हियरे हार समान ॥

अथ अल्प ।

जहँ ओछे आधेय तें ओछो है आधार ।
अनलप-मति बरनत अलप नाम तहां ऽलङ्कार ॥

सुनहु स्याम ब्रज मैं जगी दसम दसा की जोति।
जहँ मुंदरी अँगुरीन की कर मैं ढीली होति ॥

अथ अन्योन्य द्विधा ।

जो जाको सो ताहि को करतु जहां उपकारु ।
अलङ्कार अन्योन्य तेहि कहत सुकवि करि प्यारु॥
मिलि ज्यावत बिछुरे करत दोऊ दुहुनि बिहाल।
लसत लाल तोसौं लसति तू लालन सौं बाल॥
जो जामैं सो ताहि मैं यह बरनन जहँ होइ ।
आन भांति अन्योन्य यह बरनत हैं कवि लोइ॥
ऐसो तीषन तेज तुव नरपति भयो उद्दोत ।
बन मैं अरि-घर होत है अरि-घर मैं बन होत॥

अथ विसेषचतुर्धा ।

बरनत हैं आधेय जहँ बिन प्रसिद्ध आधार ।
तहां बिसेष बिसेष मति कहत सुकवि सरदार॥
बिन बारिद बिजुरी बिना बारि लसत जुग मीन।
बिधु ऊपर तमतोम यह निरखी रीति नवीन॥
कहुं प्रसिद्ध आधार को बिनहूं किये बखान ।
होत बिसेख बिसेखि कै बरनत सुकवि सुजान॥

अवनि इन्द धनि भोज धनि वे कविन्द मतिमान।
जाको जसु जिनको कह्यो अवलों जगै जहान॥
एक वस्तु बहु ठौर मैं बरनन कीजतु और ।
ताहू कहत बिसेष हैं सकल सुकवि सिरमौर॥
घर बाहिर उर अन्तरहु जहां लखों तहँ तोहि।
काहे तें धौ तपन सी तपनि तजति नहि मोहि॥

अपरंच।

बाहिरहूं उर अन्तरहुं घरहुं बनहुं चहुंओर ।
हरि हरि हाथ न आवहीं देखत हरि हरि ठौर॥
अनहूवे लायक जहां होइ करत कछु काज ।
ताहु विसेषहि जानिये अलङ्कार सिरताज ॥
बिसरि गयो तुरतहिं दहन दारुन बिरह बिषाद।
मधुर अधर तेरे पियत पायो सुधा सवादु ॥

अथ व्याघात द्विधा।

कारण के निज काज तें प्रगट जु काज बिरुद्ध।
सो तो कविजन की मते है व्याघात बिसुद्ध ॥
जासों काटत जगत के बन्धन दीनदयाल ।
ता चितवनि सों तियन को मन बाँध्यो गोपाल॥

सो व्याघात समुझि करै और और को हेतु ।
लखि अनुकूल बिरुद्ध को हेतु और कर लेतु ॥
रन तें ह्वै को अमर भाजत कायर कूर ।
यहै चाह चित करि नहीं बिचलत सांचे सूर ॥

अथ कारनमाला द्विधा ।

आगे आगे को जहां पूरब पूरब हेतु ।
बिपरीतहु तें मानि कवि कारनमाला लेतु ॥
होत पाप तें जड़ नृपति जड़ नृप तें अबिबेकु ।
दुखित फौज अबिबेक तें ता दुख जीति न नेकु ॥

द्वितीया ।

रामकृपा तें परमपद कहत पुराने लोइ ।
रामकृपा ह्वै भगति तैं भगति भाग तें होइ ॥

अथ एकावली ।

कही बहुरि छोड़्यो परै अरथ अवलि जिहिं ठौर ।
ताही सों एकावली कहत सुकवि सिरमौर ॥
मीनन को मन नै जयो मन को जीत्यो बात ।
बातहिं जीतत तेज ये तेरे तुरग दिखात॥२०८॥

अथ मालादीपक।

दीपक अरु एकावली मिलैं जहां ये दोइ ।
बरनत कवि कोबिद सकल मालादीपक सोइ ॥
खान पान सों प्रीति नहिं बिसखो सकल सवादु ।
मन तोमैं पिय को लग्यो मन मैं बिरह बिखादु ॥

अथ सार।

आगे आगे उतकरष जेहि बरनन मैं होइ ।
सार नाम तहँ कहत हैं अलङ्कार सब कोइ ॥
सिला कठोरी काठ तें तातें लोह कठोर ।
ताहू तें कीन्हो कठिन मन तुम नन्दकिसोर ॥

अथ यथासंख्य।

बर्ननीय अन्वय जहां क्रम सों लागत होइ ।
संख्यावान बखानई यथासंख्य सब कोइ ॥२१३॥
गिरे अरिन के तकत तुव रूप रोस बिकरार ।
तन तें मन तें कारन तें सेद गरबु हथियार ॥

अथ पर्याय द्विधा।

जहां कहैं पर्याय तें एक वस्तु बहु ठौर ।
अलङ्कार पर्य्याय सो बरनत कवि सिरमौर ॥

छूटी मति तें मन्दता रही पगन में आइ ।
पगनि छोड़िकै चपलता आई चखनि लखाइ ॥
पर्य्यायै सौं एक में आवैं जहां अनेक ।
ताहू सौं पर्य्याय सब बरनत कवि सविवेक ॥
को जानैं हरि रावरे ऐसे चरित अनूप ।
पहिलेही बामन भये बहुरि त्रिविक्रम रूप ॥

अथ परिवृत्ति ।

जहां अधिक अरु न्यून को लीवो दीवो होइ ।
ताही सौं परिवृत्ति कहि बरनत हैं सब कोइ ॥
ये सयान सीखि कहो कासौं केसव-राइ ।
लै मन मानिक सो दुसह दीन्ही विरह बलाइ ॥
कासौं कहिये आपनो यह अयान जदुराइ ।
मनमानिक दीन्हो तुमहिं लीन्ही बिरह बलाइ॥

अथ परिसंख्या ।

बरजि एक मैं कीजिये दूक मैं वस्तु बखान ।
परिसंख्या तासौं कहत सिगरे संख्यावान॥२२॥
राखी भीति अनीति की जस को लोभ जहान।
तैं राख्यो पर नृपनि को तकियनहीं में थान ॥

अथ विकल्प ।

कै तो वह कै यह जहां यह विकल्प दिखराइ ।
ताहि विकल्प बखानई सिगरे कवि समुदाइ ॥
दिसि दिसि कूजहिं कोकिला फूल्यो रुचिर रसालु।
दूरि करैगो बिरह-दुख कै गुपालु कै कालु ॥

अथ समुच्चयो द्विधा ।

जहँ अनेक इकवारही वस्तु बखानी जाँहि ।
ताहि समुच्चय कहत हैं सिगरे सुकवि सराहिँ ॥
बालम बाढ़ी तियन के तनु तुव बिरह बलाइ ।
बकहिँ बिसूरहिं बरहिं गिरि परहि मही मुरझाइ॥
एक काम के करन को उद्यत होंइ अनेक ।
यहो समुच्चय समुझिये बरनत कवि सबिबेक ॥
तो बोलनि देखनि चलनि रहनि और मुसुकानि।
सब मिलि मेरे हिय करैं कामबिथा की खानि ॥

अथ कारकदीपक ।

एकहि में बहुबिधि क्रिया क्रम तें बरनन होइ ।
कारकदीपक ताहि को बरनत हैं कवि लोइ ॥

चलति डँटति बोलति खिझति हँसति चर्मकि
भजि जाति ।
अरुझाये पिय के नयन तिय नैं याही भांति ॥

अथ समाधि ।

और हेतु संनिधि भये काज सुकर जब होइ ।
सकल सुजन की आधिहर जानि समाधिहि सोइ॥
भोजन की इच्छा भई जब दुज के मनमान ।
ल्याय परोसा धरि दियो तबलौंही जजमान ॥

अथ प्रत्यनीक ।

रिपु तै नाहिन बस चलै ता साथी तें जूझि ।
जहँ बरनै तहई सुजन प्रत्यनीक कों बूझि ॥
तेज मन्द रवि नें कियो बस न चल्यो तिहि संग।
दुहुन नाम एकै समुझि जारत दिया पतङ्ग ॥

अथ काव्यार्थापत्ति ।

कैमुत्तिक को न्याय करि अर्थसिद्धि जिहिं ठौर ।
काव्यार्थापति कहत हैं ताहि सुकवि सिरमौर॥
गोबरधन गिरि आँगुरी राख्यो जिन गोपेस ।
तिन उठाय मुष्टिक लियो दुहु भुज कौन बिसेस॥

अथ काव्यलिंग।

करैं समर्थन रीति तें समर्थनीयहि जोइ ।
सकल सुकबिजन के मतें काव्यलिङ्ग सो होइ॥
बाँधों वा कपि अवसि मैं एहो निसिचरपाल ।
ब्रह्मपास मो हाथ है वह बनचर कह माल ॥

अथार्थान्तरन्यास।

पहिलैं भाखि विशेष कछु फिरि कहिये सामान ।
अर्थान्तरन्यासहि कहैं ताको नाम महान ॥
छुटति सुजन की सुजनता रहै कुजनसँग माहि।
चन्दनऊ पावक परे जारत कहो न काहि ॥

अथ विकस्वर।

प्रथम विशेष कह्यो कियो फिरि सामान्य बखानु
पुनि विशेष उपमान करि कह्यो विकस्वर जानु
आन बीर को बरनिये लखि तेरो जय-पत्र ।
ज्यों लघु आगे बड़नि के ज्यों ससि उदै नछत्र॥

प्रौढ़ोक्ति।

हेतु है न उत्करष को कल्पित होत सु कौन।
तासौं सिगरे कहत हैं प्रौढ़ोकति परवीन॥२४४॥

तेरो जस सुरसरित की पुण्डरीक सो सेत ।
हरि निकेत हरि नगर मे कीन्हे रहत निकेत ॥

सम्भावना ।

होइ जु यों यह तर्क जहँ कछु ह्वैबे के हेत ।
सम्भावन तासों कहत सिगरे सुमति-निकेत ॥
उगै जो कातिक चन्द की छनदा छोड़ि कलङ्क।
तो कहुं तेरे बदन की समता लहै मयङ्क ॥

मिथ्याध्यवसित ।

कछू झुठाई सिद्धि कों कह्यो झूठ जहँ और ।
मिथ्याध्यवसित कहत हैं ताहि सुकवि सिरमौर
तेरो कुजस सुनाइवे बधिरन बसुधा बीर ।
गावत गूंगा कछू पी दूध उदधि के तीर॥२४६॥

ललित ।

कियो वर्न्य वाक्यार्थ को जहँ प्रतिबिम्ब बखान।
तासों सिगरे कहत हैं ललित २ मतिमान ॥
कहा रह्यो जगजाल मै बँधि तू प्रभुहिं बिसारि।
रे मन बौरा चहत है मृगतृष्णा मै बारि॥२५१॥

प्रहर्षन त्रिधा ।

जतन बिनाही होत है जहँ चित चाह्यो अर्थ ।
ताहि प्रहर्षन कहत हैं सिगरे सुकवि समर्थ ॥

जाको रूप अनूप लखि सखिन गयो धरि धीर।
आपुहि ते गैया दुहन आयो वहै अहीर॥२५३॥
जहँ चितचाही वस्तु ते अधिक अरथ सिधिहोइ
कहत प्रहर्षन हरषि कै तासु सों सब कोइ ॥
बहरावन को बिरहदुख लिखनलगी जिहिंचित्र।
अलि विन आयेही अवधि आयो सोई मित्र ॥
फल उपाय को सिद्धि को जतन करै कछु कोइ
ताही जतनहि मो सुफल मिलै प्रहर्षन सोइ ॥
डरत २ आये ललन कीबे कों मनुहारि ।
लखतहिअँखियनहँसिदियोसबसखिसीखबिसारि

अथ विखादन।

जहँ चित-चाही वस्तु ते पावै वस्तु विरुद्ध ।
वुद्धिवन्त बुध बरनहीं तहां विखादन सुद्ध ॥
बागहिं बिरहविनोद को ल्याई सखी लिवाइ।
लखत ताहि कुसुमित बढ़ी दूनी विरह बलाइ॥

अथ उल्लासचतुर्थी।

इक तें गुन गुन आन को दोष दोष ते जानि।
गुन सों दूषन दोष ते गुन उल्लास बखानि ॥

गुन तें गुन यथा ।

अरुन उनीँदी अधखुली आलस-वलित विसाल।
लखि नीकी आंखै सफल कीजत क्यों न गुपाल ॥

दोषतें दोष यथा ।

लाग्यो चाहत पार तो चढ़ि न जाजरी नाव ।
आप बूड़ई औरउ बोरत मांझ दरयाव ॥२६२॥

गुन सों दूषन यथा

बरिसि बारिद की लता तृन तरु सकल हरयात।
करम लखो येहि आँक को जलहू सों जरिजात॥

दोषसोंगुन यथा ।

सूंघि स्वाद लै बाँदरनि तज्यो मानि मति माख
कियो न चूरन जतन करि रतन लाभ गनिलाख

अथ अवज्ञा द्विधा ।

गुन ते गुन अरु दोष ते दोष न पावै आन ।
ताहि अवज्ञा नाम कहि गावत सब सज्ञान ॥
विपुल बारि बरषत जलद तरु तृन तुरत हरयात
इन पापीन करील मै कबहुंन उलहत पात ॥
तिमिर तोम तुरतै मिटत पगटैं जाहि कछूक।
कहा दोष दिननाथ को देखै जौ न उलूक ॥

अथ अनुज्ञा ।

इच्छा करिये दोष की दोषहि मै गुन देखि ।
ताहि अनुज्ञा कहत हैं कवि सिगरे अवरेखि ॥
होइ सखी कबहूं कहूं काहू सों मति प्रीति ।
को भोगै दीरघ दहन दारुन विरह अनीति ॥

अथ लेसो द्विधा ।

जहां दोष को होइ गुन गुन को दोष लखाइ ।
लेस नाम तासों कहत सकल सुकवि समुदाइ ॥

दोष को गुन यथा ।

नहिं राजा तें दण्डभय नहि कछु चोरकलेस ।
नाहिँ दिवाले तें डरैं धनि दरिद्र को देस ॥

गुन को दोष यथा

झोरत तोरत तोहिँ सब तजि कितेक तरुजाल ।
सो तू अपने फलनि को फलु जिय जानि रसाल ॥

अथ मुद्रा ।

प्रकृत अरथ मै मिलहिँ पद औरहु नामप्रकासि ।
मुद्रा तासों कहत हैं कविजन हिये हुलासि ॥
सुनि मुरली सुरधुनि सखी गोमति को सुविवेक ।
जमुनायकुरति को भयो सरसै हिय धरि टेक ॥

अथ रत्नावली ।

प्रकृत-पदन को कीजियत क्रम सों जहां बखान
वहै रुचिर रत्नावली उर आनत मतिमान ॥
ओजकलितअरुकलनिजुतछितिहरखदबुधिमान
गुरु कवि-लालित सूरवर नन्दन तुही न आन ॥

अथ तदगुन ।

जहां छोड़ि गुन आपनो औरै को गुन लेइ ।
गावत तदगुन ताहि को गुनी गिरा को सेइ ॥
गई बिसद रँग रुचिरई भई अरुन छबि नील ।
लै मुकुता कर मै करति तूं मूंगा को मोल ॥

अथ पूर्बरूपो द्विधा ।

बहुरि मिलै गुन आपनो जहां आन के संग ।
तासों पूरबरूप कवि कहत सेइ सतसंग ॥
लखत नीलमनि होत अलि कर बिद्रुम दिखरात
मुकुता कों मुकुता बहुरि लख्यो तोहि मुसुकात
वस्तु विनासेहु बहुरि तरह पीछली होइ ।
बरनत पूरबरूप कबि ताहु सों सब कोइ ॥
अथयेहु इन्दुहिं तिमिर तोमहिं दियो पछेलि ।
चहूंओर मुखचन्द को रही चाँदनी फैलि ॥

अथ अतद्गुन।

जहां आन के संगहू गुन न आन को होइ।
ताहि अतद्गुन कहत हैं जे सहृदय सब कोइ॥
कियो सेत सिगरो जगत तेरे जस अभिराम।
सूमन के मुख वैसई रहे स्याम के स्याम॥२८४॥

अथ अनुगुन।

पहिले को गुन आपनो बढ़ै और के संग।
तासों अनुगुन कहत जे जानत कविता अंग॥
ऐसेही ये खलक को करत रहत बिन चैन।
अब चाहति कीन्हो कहा करि कजरारे नैन॥

अथ मीलित।

समता ते नहिं नेकऊं परै जुदाई जानि।
मीलित मानत ताहि को सिगरे कवि उर आनि
मरकत मनि अलि सीस पै नेकहुं नाहि दिखात।
सुबरन के भूषन तिया तन सुबरन मिलि जात॥

अथ सामान्य।

सम तातें नहिं नेकु जहँ आन तरह दिखराइ।
ताहि कहत सामान्य जे असामान्य कविराइ॥

देखहु ताके मिलन कों प्यारो दूत अकुलाइ ।
उतै खरी दरपन महल मृगनैनी मुसुकाइ ॥

अथ उन्मीलितालंकारो बिसेषकालंकारश्च ।

समता मै लखि भेद कों उन्मीलित उर आनि ।
जो बिसेष दिखराइ तो हिये बिसेषक जानि ॥

तिय-तन-दीपति मैं कनक भूषन गये बिलाइ ।
लखत लाल कों तुरत उठि पुलकन दये बताइ ॥

अथ बिशेष ।

ज्यों बिधु बंधुर सों तिया तेरो बदन दिखात ।
मेटत भारी भूल को होतो जो न बिभात ॥

अथ गूढोत्तर ।

अभिप्राय-जुत ज्वाब जहँ कहि गूढोत्तर सोइ ।
प्रस्न जानि लीजै कहूं कहुं पूछें पर होइ ॥

धेनु धूमरी राउरी ह्यां कित है जदुबीर ।
वा तमाल तरु तर तकी तरनि-तनूजा तीर ॥

मित्र कुसल वाकों बिरह वारे कैधों आंग ।
हेह नांधि तुम सों कहो कहा कुसल की खांग ॥

अथ चित्र द्विधा ।

प्रश्नहि मै उत्तरु उतरु बहु प्रश्ननि को एक ।
द्वैबिधिचित्रबिचित्रमति कहत सुकवि सविवेक॥
को है जारत अगिन बिन को रे नेहविहीन ।
कौन ठौर मैह्न रही सखि जदुपति लखि लीन॥

अन्यभेद ।

तम-रिपु को अवतार पुनि तीजो कौन सुरूप ।
को रन मै सनमुख डरत उतर सूर अनूप॥२९९॥

सूक्ष्म ।

चित को आसय आन को समुझै ते जहँ कोइ।
अभिप्रायवारी करत चेष्टा सूक्षम सोइ ॥ ३०० ॥
बदन लगायो बिम्बफल तियतन चितै मुरारि ।
सीसफूल कर दाबि कै निज हिय परस्यौ नारि॥

पोहित ।

परबिरतन्त समुझि करै चेष्टा साभिप्राय ।
बरनत पिहित बिचारि कै ताही सो कविराय॥
हेरि हारु उपवीत की रीति सखी मुसुकाइ ।
पीरो प्यारी को दयो उपरैना पहिराइ ॥३०३॥

व्याजोक्ति ।

काम कियो सुछपाइबे आन हेतु की उक्ति ।
ताहि कहत व्याजोक्ति जे जानत कविता-जुक्ति॥
बढ़ो सांस उर धकधकी चली सेद सो न्हाय ।
निपट दूरि जमुना भरन जल अब जाय बलाय॥

गूढ़ोक्ति ।

औरै सो कहि कै वचन औरहि देइ जनाइ ।
ताही सो गूढ़ोक्ति सब कहत सुकवि समुदाइ॥
अब तू हरि ना आपनी बारी करिन बिहार ।
या बारी को देखियत आवत राखनहार ॥

विवृतोक्ति ।

छप्यो अरथ जो श्लेष सो प्रगट करै कवि ताहि।
कहतसबैविवृतोक्ति बुध विविधविबुधमतचाहि॥
बरी तिहारी होइ तो बाकी तपनि बुझाइ ।
यौं करि विरह निवेदना लालहिं दियोमिलाइ॥

अथ युक्ति ।

ठगै क्रिया सौं आन को मरम छपावन हेत ।
युक्ति बखानत ताहि को सिगरे सुमतिनिकेत॥
गयो मिलन मोहन सुनै विरहताप तिय छीन ।
निरखि ताहि देखन लग्यो फिरि२ महलप्रवीन॥

अथ लोकोक्ति ।

कहनावति जो लोक की वैसी उक्ति जु होइ ।
अलङ्कार लोकोक्ति सों बरनत हैं सब कोइ ॥
देइ चिनोतो चन्द कों सहि रतिपति को गारि।
लिये हाथ मे प्रानिज रही औधि लौं नारि ॥

अथ छेकोक्ति ।

अरथ आन लोकोक्ति की भीतर जहां दिखाइ ।
अलङ्कार छेकोक्ति तहँ बरनत हैं कविराइ ॥
बचत न केहू कैतिको कोऊ करो सयान ।
किये चिन्हारी भूत सों होत जीव को ज्यान ॥

अथ बक्रोक्तिदिधर ।

कियो श्लेष सों काकु सों कल्पित औरै अर्थ ।
ताहि कहत बक्रोक्ति हैं सिगरे सुकवि समर्थ ॥
राधा हरि पायन परें का मैं कियो गुमान ।
मिलि मित्रहि तजिये सुक्यों मिलै रैनिदिननाह

काकु ।

कीन्हो कछु न गुनाह क्यों राधे रही रिसाइ ।
तुम न किया कछु भाषियो माखो कमलघुमाइ॥

अथ स्वभावोक्ति ।

जहां २ कवि कोविदन बरन्यो जाति सुभाउ ।
तहां २ सब कहत हैं सुभावोक्ति ठहराउ ॥
छिनगावतरोवतछिनक छिनबिहँसतबिनकाज ।
खुसी करत खेलत पख़्यो पलना पर ब्रजराज ॥

अथ भाविक ।

जहां भूत भावी अरथ बरन्यो कवि परतच्छ ।
अलङ्कारभाविक कहत ताकों सब मति स्वच्छ॥
जाको छवि कों देखि के होत मनहि बिसराम।
चित्रकूट मै जानिये अबहू राजत राम ॥३२२॥

अथोदात्तः ।

कोउ काहू को कितो अंग बखान्यो होइ ।
संपति के अति उक्तिकै कहि उदात विधि दोइ॥
सुबरनपुर मनि-मै महल रह्यो महाछवि फैलि ।
चौकी चिन्तामनिन की बैठी सुबरन-बेलि ॥
खरदूषन त्रिसिरा सिरनि तजि दूषन जिहि ठौर
रघुकुलभूषन जू रच्यो हरभूषन निजजोर ॥

अत्युक्ति ।

अद्भुत झूठ उदारता सूरतादि की उक्ति ।
सिगरे कवि कोविद कहत अलंकार अत्युक्ति ॥
बारिद लों बसु बरखि कै कविकुल किये कुबेर।
निकट जु होतो मेह तो देत न होती देर ॥

निरुक्ति ।

जहां जोग ते नाम को कलपित औरै अर्थ ।
तासों कहत निरुक्ति जे कविता करन समर्थ ॥
छीनी छवि मृग मीन की कहो कहां की रीति।
नामहि मे नहि नीति का करैं नयन ये नीति।

प्रतिषेध ।

जहँ परसिद्ध निषेध को कीन्हो कविन बखान ।
ताहि कहत प्रतिषेध हैं सिगरे सुमति-निधान॥
जीत्यो जाहि बिरोध करि सो विरोध मै नांहि।
मैं हौं रावन राम का समुझ्यो निजमनमांहि॥

बिधि ।

जहां सिद्धउ वस्तु को कीन्हो कविन बिधान ।
अलङ्कार बिधि ताहि को कहत सबै मतिमान॥

भये न बस दशरथतनै बहु बिधि भई अनूप ।
बहुरि राक्षसी राक्षसी भई भयानक रूप॥३३३॥

हेतुर्द्विधा ।

जहां काज के संगही कीन्हो हेतु बखान ।
कहत हेतु करि हेतु कवि ताहि सकल मतिमान
रूपरासि तुव तनु सखी सुबरन-सोभित आहि ।
ऐसो जग को धीर को लागत लोभ न जाहि ॥
बरन्यो सुकविन एक करि जहां काज अरु हेतु।
ताहू सों सब कहत हैं हेतु किये अति हेतु ॥
सुजसबेलि को बागछिति तिय को परमसुहाग ।
मूरतिवन्त प्रजानि को तू महीप अनुराग ॥
नगनिधिरिषिबिधु*बरषमै सावनसिततिथिसंभु
कीन्हो सुकवि गुबिन्दजू कर्णाभरण अरंभु॥३३८॥

इति श्रीगोविन्दकविकृत कर्णाभरणअलंकार समाप्तः ।

*सम्बत् १७९७ ।